Gyanvividha [A Peer Reviewed and Refereed Journal] March 2024 : Year-1, Vol-2 : PP-63-66

ज्ञानविविधा
रचना, आलोचना और शोध की त्रैमासिक पत्रिका

Online ISSN : 3048-4537
March 2024 : 1(2)63-66
©2024 Gyanvividha
www.gyanvividha.com

डॉ. उमेश कुमार शर्मा
युवा साहित्यकार

Corresponding Author :
डॉ. उमेश कुमार शर्मा
युवा साहित्यकार

कहानी

मुक्ति की घोषणा

बात उन दिनों की है, जब मैं दूसरी बार मैट्रिक की परीक्षा देकर रिजल्ट का इंतजार कर रहा था। पहली बार में गणित में फेल हो चुका था। गणित की परीक्षा इस बार भी बहुत अच्छी नहीं गयी थी, इसलिए मन में अनंत आशंकाएँ सिर उठा रही थीं। कहीं इस बार फेल हुआ तो मुँह दिखाने लायक न रहेंगे। यह एक तरह से मेरे लिए अंतिम चान्स था। इस बार फेल होने का मतलब था कि मेरी ज्ञान- यात्रा यहीं समापन! बहुत रोने -कलपने पर पिताजी ने हमें इस बार परीक्षा फार्म भरने दिये थे। लेकिन गणित मेरे लिए एक तिलस्मी खोह के समान था, जिसे पार करवाने में सारे एय्यार बेकाम हो गये थे। मन में भय ने इस तरह अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था कि प्रकृति की हरेक चीजों में मुझे कोई अदृश्य शक्ति दिखाई दे रही थी। परीक्षा देने जाने से लेकर अबतक न जाने कितने देवी-देवता को क्या-क्या कबूल दिया था मैंने।

उस समय कबीर पंथ के महंथ प्रदुमन दास लगातार अपने शिष्य बढ़ा रहे थे। मैंने भी मन ही मन ठान लिया कि सदुरु की कृपा से अगर इस बार मैं पास कर गया तो मछली -मांस का भक्षण तरंत छोड़कर प्रदुमन दास से भेख (कंठी) ले लेंगे।

मैं इस बार भी मैथ छोड़कर सब विषय को कुछ न कुछ पढ़ लिया था। मुझे इश्वरीय शक्ति पर अटूट भरोसा था। पूरी तरह सोच कर परीक्षा देने गया कि इस बार ईश्वर की कृपा से जरूर मेरे बगल वाले मैथ में पारंगत होगा। लेकिन वहाँ जाकर पता चला कि मैं जिसके भरोसे गणित को छोड़ दिया था, वे स्वयं मेरे ही भरोसे परीक्षा देने आया है। मुझे याद आने लगी वह लड़की जो पहली बार में मेरे पास गणित की परीक्षा दे रही थी। वह किसी संपन्न घराने की थी। गोरा रंग, छरहरा कसा हुआ शरीर, सजीला नैन नक्स। आकर्षक पहनावा। उसके पास बैठकर मैं कृतार्थ हो गया था।

नंदकिशोर भाई ने कूट किया, 'क्या बात है तुम्हारे साथ तो परी बैठी रहती है। बहुत मजा आता होगा न?'

नंदकिशोर मेरा पड़ोसी और वर्ग मित्र था। उसकी उम्र मुझसे तीन-चार साल अधिक था। उसने देर से पढ़ाई शुरु की थी। स्कूल में सभी लड़के उसे बुड्ढा कबूतर कहते थे। उसका सीट मेरे बगल वाले कमरे में पड़ा था। उस कमरे में सभी लड़के ही बैठाए गये थे। एकदम सूखा पड़ा था। कहीं कोई हरियाली नहीं। इसलिए वह अपनी आँखें सेकने मेरे कमरे में तब तक बैठा रहता, जब तक कॉपियाँ न बटने लगतीं। वह अपने अभाग्य पर रो रहा था। और इस प्रकार हमारे भाग्य की सराहना कर रहा था, जैसे मेरी उस परी के साथ सगाई हो गयी हो।

उसी के रूप-लावण्य के अवलोकन में मैं भूल गया कि गणित की परीक्षा में देक्सी मारनी है। अंत-अंत तक मैं उसके चेहरे की ही देक्सी मारता रह गया। वह मेरे तन मन में इस भाँति समा गयी कि महीनों उसी के सपने आते रहे। कभी प्रेम -निवेदन, कभी नोक-झोंक, कभी आलिंगन तो कभी अभिसार.....।

"रिजल्ट आ गया!" नंदकिशोर भाई ने हमें बुझे हुए स्वर में सूचित किया, "हम भी फेल तुम भी फेल!"

मैं सन्न रह गया! ये कैसे हो सकता है? सारे पेपर तो ठीक थे। क्या गणित फिर से.....

यह सच था कि हम दोनों फेल हो चुके थे। उसके भाई ने हम दोनों का रोल नंबर अखबार में खोजा था। फस्ट डिविजन से लेकर थर्ड डिविजन तक हम दोनों कहीं नहीं थे। वह जरूर पास कर गयी होगी। अब हमारी और उसकी क्या बराबरी! मैं अपनी औकात पर आ गया। मन में बस जाने वाली प्रेमिका के साथ हमारा स्थायी संबंध-विच्छेद हो गया।

नंदकिशोर फेल होकर भी प्रसन्न था। इस परीक्षा में उसके जीवन की सबसे बड़ी साध पूरी हो गयी। उसने पहली बार रेलगाड़ी देखी। जो उसकी कल्पना से कई गुणा विशालकाय थी। अब तक रेल उसने किताबों में देखे थे। हम लोगों का सेंटर सहरसा पड़ा था। वहाँ पहुँचते ही नंदकिशोर भाई ने अपनी इच्छा प्रकट की 'रेलगाड़ी देखने चलना है। एक किराये के घर में हमलोगों ने अपना सामान रखा और चल पड़ा रेलगाड़ी देखने। संजय पहले से वहीं रहता था। उन्हीं मार्गदर्शन में यह चाहत पूरी होनी थी। नंदकिशोर बहुत उत्साहित थे। इसी उत्साह में उन्होंने अपना सफेद रंग का नया सर्ट पहना, कंघी किया। मानो आज वह रेलगाड़ी देखने नहीं जा रहा हो, बल्कि रेलगाड़ी खुद उसे देखने और पसंद करने आने वाली हो। दो किलोमीटर की दूरी हम सब देखते ही देखने नाप गये। सड़क की चौड़ाई और असपर दौड़ती हुई गाड़ियाँ, सजे-संबरे हुए लोग, सजी हुई दुकानें, पहाड़ की भाँति ऊँची-ऊची मकानें सब कुछ हमें बेहद आकर्षित कर रहा था। कभी बलग से दसचकिया ट्रक गुजरता तो संजय से पूछता वह भाई रेल इससे और बड़ी होती होगी। अरे यह तो कुछ भी नहीं। रेल देखकर तो तुम्हारी फट पड़ेगी।

सहरसा जंक्शन पहुँच गये हम सब। लेकिन पता किसका मुँह देखकर जगे थे। आज प्लेटफॉर्म पर एक भी गाड़ी नहीं। प्लेटफॉर्म से अलग रेल की एक पुरानी इंजन धुकधुकाती हुए कराह रही थी। हम सब उसका गहन अवलोकन करने पहुँच गये। नंदकिशोर भाई एकदम छू लेना चाहता था। वह इसी इच्छा से गाड़ी के पास पहुँचा कि जले हुए मोबिल की पिचकारी छूटी। नंदकिशोर भाई आपादमस्तक सराबोर। मैं चिल्लाया पर तुरत ही उसके चेहरे की तृप्ति को भांपकर चुप हो गया। तभी प्लेटफॉर्म पर एक मुकम्मल रेलगाड़ी आकर रूक गयी। नंदकिशोर भाई नेहाल हो गये। वे घंटों अपलक देखते रहे, सोचते रहे। इतना भीमकाय.....इसमें तो सैकड़ों ट्रक समा जाएगा.....हजारों लोग सवार हैं.....

दूसरी बार फेल होने के बाद सभी का विश्वास मुझ पर से उठ गया था। हम पढ़-लिखकर कुछ कर सकते हैं। ऐसा किसी का मानना नहीं था। सच तो यह था कि मुझे पढ़ने का न वक्त मिलता था, न किताबें....

समय नहीं मिल पाने का महत्वपूर्ण कारण था कि मुझे दिनभर पिताजी के साथ लोगों के घर मजदूरी करने जाना पड़ता था। दिन भर फर्नीचर का भारी-भरकम काम से देह इस तरह टूट जाता था कि बहुत चाहकर भी दो-तीन घंटे से ज्यादा नहीं पढ़ पाता था। पढ़ते समय दिन भर के ताने दिमाग में तांडव कर रहा होता।

-इतनी देर से काम पर आओगे तब तो हो गया काम।

-अरे जल्दी-जल्दी हाथ चलाओ न, सुस्ती दाबे हुआ है क्या?

-घंटे -घंटे हथियार ही पिजाते रहोगे तो काम क्या होगा?

-अरे, खाकर कब तक सुस्ताते रहोगे?

-अभी सूरज ढला नहीं कि औजार-पाती समेट लिए!

-कल से नहीं आना काम पर, हम दूसरा मिस्त्री खोज लेंगे।

एक बार तो ऐसा हुआ कि हम और पिताजी विश्वनाथ यादव के यहाँ सुबह आठ बजे काम पर पहुँचे। उनकी बेटी का गौना था, इसलिए विदाई के लिए पलंग, कुर्सी, टेबुल और स्नानी चौकी आदि बनाना था। पिताजी लकड़ी छाँटकर निकालने लगे और हम औजारों मे धार लगाने लगे। अभी ग्यारह बजे थे कि उधर से विश्वनाथ यादव तमतमाए हुए आए और कहने लगे, आज काम छोड़ दो। कल से आना।अब तक तो तुमने अपना ही काम किया है न? औजारों में धार बन गया न? काम कल से होगा। हम लोग औजार समेट कर झोला में रखे और बिना कोई सफाई दिये लौट आए घर। चूँकि हमें पता था कि वह तामसी प्रवृति का आदमी है। सूद का सूद खाते-खाते उसके भीतर का आदमी मर चुका है। गरीब लोग उसके आगे आँसू बहाता रहता है, पर उसका कलेजा नहीं पिघलता।

हम अभी दरवाज़े से उतर ही रहे थे कि विश्वनाथ यादव अपने चमचे रेशम यादव को कहने लगे, 'ई बरहीबा एक नंबर का बेईमान है। तभी तो दिन भर खटने पर भी पेट नहीं भरता है।'

पिताजी के साथ मजदूरी करने के सिवाय और कोई चारा न था। उसी दौरान पिताजी और चाचा जी में कुछ विषयों को लेकर झंझट हुआ था और वे दोनों अलग हो गये थे। दोनों साथ थे तो घर-गृहस्थी के भार से मुक्त थे हम सब। पर उनके अलग हो जाने से पिताजी आर्थिक दबाव में आ गये।

चाचाजी की बेटी की शादी हो गयी थी साझे में इसलिए उन्होंने छोटा परिवार सुखी परिवार की चाहत से अलग होने में ही अपनी भलाई समझी। शादी में जो पचास हजार कर्ज हुआ था, उसका आधा भार पिताजी पर डाला गया। हम छह भाई-बहन थे। अभी सब पढ़ ही रहे थे, इसलिए भी परिवार में कमाऊ केवल पिताजी रह गये। ऐसे में तय हुआ कि दिन में सब मिलकर काम करेंगे और रात में पढ़ाई।

पिताजी भाई से अलग होना कभी नहीं चाहते थे, लेकिन मेरे बड़े भाई ने जैसा कांड किया था, अलग होना ही उसका अंतिम समाधान था। हुआ यह कि बड़े भाई को सर्वसम्मति से कॉलेज की पढ़ाई के लिए सहरसा भेजा गया। वहाँ वे सहरसा कॉलेज सहरसा से बी.एस. सी. की पढ़ाई कर रहे थे। उसी दौरान उनका आना- जाना मेरे चाचा के ससुराल में होने लगा, जो कि बीच रास्ते में पड़ता था। उसी समय चाची की भतीजी से उनकी आँखें लड़ गयीं। कुछ ही दिनों में नैन-मटक्का शुरु हो गया। उसके परिवार के लोग सबकुछ जानकर चुप थे। जब बकरा खुद हलाल होने आ गया तो बुरा क्या है? दोनों के मिलने -जुलने पर कोई पाबंदी नहीं। प्यार फल-फूल कर परिपक्व हो गया। आखिरकार एक दिन उसकी माँ ने दोनों को ले जाकर 'कोट मैरिज' करवा दिया। सप्ताह भर बाद भैया घर लौटे, लेकिन उससे पहले शुभ-विवाह की सूचना यहाँ तक पहुँच चुकी थी। पिताजी दोनों भाई एक ही टांग पर नाचने लगे। दोनों की ताल अलग-अगल थी। पिताजी दहेज को लेकर चिंतित थे, पर चाचा जी के लिए नाक का सवाल था। उसकी नाक कट गयी थी। उसने अपने ससुराल वाले से सारे रिश्ते तोड़ लिये। चाची समझाती रही कि अब जो होना था सो हो गया.....पर चाचा जी ने इस घटना को गंभीरता से लेते हुए यह कसम खायी कि उसने अगर जीवन में कभी वीणा के हाथ का अन्न ग्रहण किया तो गोमांस.....!

पिताजी इस भीष्म प्रतिज्ञा से बेहद आहत हुए! उन्हें बेटे ने हरा दिया। साल भर बाद गौना हुआ और उससे पहले दोनों के बीच संपत्ति का बँटवारा। संपत्ति के नाम पर बहुत कुछ बाँटना नहीं था, इसलिए एक दिन में सब राफ-साफ। अच्छा हुआ कि दादा-दादी इस कांड से पहले गुजर गये, अन्यथा वे बहुत दुखी होते।

दादी जी की उम्र गाँव के जमींदारों की बेगारी करते हुए गुजर गयी। पिताजी ने इस परंपरा का निर्वाह न किया, जिसके कारण लोग हमारे परिवार से दुखी रहने लगे। दोनों भाई के अलग होते समय गृहस्थों का भी बँटवारा हो गया था। रामनगर और सितली टोला पिताजी के हिस्से में आया और डरहार तथा पकरिया टोला चाचा जी के जिम्मे। दोनों अपने -अपने गृहस्थों का हल-फार बनाने-ठोकने लगे। हमें सुबह उठकर गृहस्थों का हसुआ-खुरपी में धार बनाना था। ठीक यही काम चाचा के गृहस्थों का चचेरा भाई करने लगा। यह काम लगभग सालों भर सुबह छह बजे से आठ-नौ बजे तक चलता था। उसके बाद दैनिक मजदूरी के लिए जाना था। दादा जी कहते थे कि कोसी के प्रकोप से घर-द्वार, जमीन-जथा सब नदी में बह गया। रहने- खाने का कोई ठिकाना न था, तब इसी गाँव के लोगों ने उसे आश्रय दिया, यहाँ लाकर बसाया। इसलिए इस गाँव की सेवा सबसे बड़ा धर्म है। कुछ भी हो जाय, हम जीते जी गाय नहीं निगल सकते।

हल-फार ठीक करने का सलाना तीस किलो अनाज तय था। जो अब तक कायम था। हसुआ-खुरपी के बदले हर फसल पर 'मुठिया' का प्रावधान था। किसान पूरे खेत का फसल काट लेता और दो कोने पर कुछ फसलों को छोड़ देता था। एक कोना नाई के लिए और दूसरा बढ़ई के लिए। इसी को मुठिया कहा जाता था। दादी जब भी मुठिया काटने पहुँचती तो नाईन के साथ उनका टकरार होता। दोनों जब तक एक दूसरे के पुरखे का पिंडदान न कर ले, पति और बेटे का श्राद्ध न कर दे, घर नहीं लौटती थी।

'साली' अक्सर लोग मकई के सीजन में देते। सबसे निकृष्ट अनाज तब मकई ही माना जाता था। दादा जी धान पर चोट करते थे। 'हमारे बाल-बच्चे भात नहीं खाएंगे? हम कहाँ जाएँ? एक साल मकई देते हैं तो एक साल धान चाहिए।'

किसानों की स्त्रियाँ बहुत चतुर थीं। वह हरगिज धान देना नहीं चाहती थीं। धान दहा गया बाढ़ में.....थोड़ा-बहुत हुआ है, जो बीज के लिए रखे हैं। महिलाओं से इस बात को सुनकर दादाजी भावुक हो जाते। बीज रहेगा, तभी न अगले साल धान की फसल लगेगी और उसे भी धान मिलेगा।

"ठीक है मालकिन, हमें मकई ही दे दो।" वे अक्सर हथियार डाल देते। उसी मकई को चबाते हुए हमारे साल बीत जाते।

एक बार माघ का महीना था और घर में खाने को कुछ भी न था। पिताजी जहाँ-जहाँ काम किये थे। सब जगह हाथ फैला आए थे, पर किसी ने एक पैसे न दिये। फिर वे सुबह में बोरी लेकर निकले और दोपहर को खाली हाथ लौट आए किसी ने मुट्ठी भर अनाज न दिये। हम सब का मुँह देखकर रो पड़े वे। साल भर मेहनत करने पर भी हमारे बाल-बच्चे भूखे.....! उस रात भी चूल्हा न जला।

रात भर करवट वे बदलते रहे। माँ भी कहाँ सो पायी थी उस रात। सुबह वे माँ के हाथ का कंगन नाक का नथिया और कान की वाली बाली बेच आए। और समूचे गाँव को बैठाकर बोल दिये कि आपलोगों ने मेरे बाप को बसाया था। वे जीवन भर आपकी बेगारी करते रहे। मेरी भी आधी उमर गुजर गयी आप सबकी सेवा में। माफ करना, अब हल-फार ठोकने से हमारा गुजारा नहीं होता है। आपलोग अपना बढ़ई खोज लीजिए। हमें मुक्त कीजिए।

गाँव भर के किसान इस घोषणा से भौंचक रह गये।

"क्या दिक्कत है तुम्हें?" एक साथ कई स्वर उभरे, पर पिताजी ने कुछ न सुना। चलते रहे। वे रूक जाते तो शायद और कई पीढ़ियाँ रूक जातीं.....

वे फर्नीचर की अपनी दुकान खोलकर चलाने लगे। अब वे अपनी मर्जी से कमाने-खाने लगे। उन्होंने हमें फिर एक मौका दिया- "मन लगाकर पढ़ो..... पास हो गये तो आगे जहाँ तक मन हो पढ़ना। हम खरच उठाएंगे।"

अब लगता है कि वह मुक्ति केवल पिताजी की नहीं थी। हम सबकी थी..... कई पीढ़ियों की मुक्ति थी। हम सभी वर्षों की गुलामी से मुक्त हो गये। स्वाधीन, स्वच्छंद.....!